# रामचरित्मानस

## उत्तरकाण्ड

### गरुड़जी के सात प्रश्न तथा काकभुशुण्डि के उत्तर

चौपाई :
*** पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। जौं कृपाल मोहि ऊपर भाऊ॥। नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी॥1॥
भावार्थ:-
पक्षीराज गरुड़जी फिर प्रेम सहित बोले- हे कृपालु! यदि मुझ पर आपका प्रेम है, तो हे नाथ! मुझे अपना सेवक जानकर मेरे सात प्रश्नों के उत्तर बखान कर कहिए॥1॥
*** प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा। सब ते दुर्लभ कवन सरीरा॥ बड़ दुख कवन कवन सुख भारी। सोउ संछेपहिं कहहु बिचारी॥2॥
भावार्थ:-
हे नाथ! हे धीर बुद्धि! पहले तो यह बताइए कि सबसे दुर्लभ कौन सा शरीर है फिर सबसे बड़ा दुःख कौन है और सबसे बड़ा सुख कौन है, यह भी विचार कर संक्षेप में ही कहिए॥2॥
*** संत असंत मरम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु॥ कवन पुन्य श्रुति बिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कराला॥3॥
भावार्थ:-
संत और असंत का मर्म (भेद) आप जानते हैं, उनके सहज स्वभाव का वर्णन कीजिए। फिर कहिए कि श्रुतियों में प्रसिद्ध सबसे महान् पुण्य कौन सा है और सबसे महान् भयंकर पाप कौन है॥3॥
*** मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई॥ तात सुनहु सादर अति प्रीती। मैं संछेप कहउँ यह नीती॥4॥
भावार्थ:-
फिर मानस रोगों को समझाकर कहिए। आप सर्वज्ञ हैं और मुझ पर आपकी कृपा भी बहुत है। (काकभुशुण्डिजी ने कहा-) हे तात अत्यंत आदर और प्रेम के साथ सुनिए। मैं यह नीति संक्षेप से कहता हूँ॥4॥
***नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥ नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी।

ग्यान बिराग भगति सुभ देनी॥5॥

भावार्थ:-

मनुष्य शरीर के समान कोई शरीर नहीं है। चर-अचर सभी जीव उसकी याचना करते हैं। वह मनुष्य शरीर नरक, स्वर्ग और मोक्ष की सीढ़ी है तथा कल्याणकारी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को देने वाला है॥5॥

*** सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं बिषय रत मंद मंद तर॥ काँच किरिच बदलें ते लेहीं। कर ते डारि परस मनि देहीं॥6॥

भावार्थ:-

ऐसे मनुष्य शरीर को धारण (प्राप्त) करके भी जो लोग श्री हरि का भजन नहीं करते और नीच से भी नीच विषयों में अनुरक्त रहते हैं, वे पारसमणि को हाथ से फेंक देते हैं और बदले में काँच के टुकड़े ले लेते हैं॥6॥

*** नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं॥ पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया॥7॥

भावार्थ:-

जगत् में दरिद्रता के समान दुःख नहीं है तथा संतों के मिलने के समान जगत् में सुख नहीं है। और हे पक्षीराज! मन, वचन और शरीर से परोपकार करना, यह संतों का सहज स्वभाव है॥7॥

*** संत सहहिं दुख पर हित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी॥ भूर्ज तरू सम संत कृपाला। पर हित निति सह बिपति बिसाला॥8॥

भावार्थ:-

संत दूसरों की भलाई के लिए दुःख सहते हैं और अभागे असंत दूसरों को दुःख पहुँचाने के लिए। कृपालु संत भोज के वृक्ष के समान दूसरों के हित के लिए भारी विपत्ति सहते हैं (अपनी खाल तक उधड़वा लेते हैं)॥8॥

*** सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढ़ाई बिपति सहि मरई॥ खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी॥9॥

भावार्थ:-

किंतु दुष्ट लोग सन की भाँति दूसरों को बाँधते हैं और (उन्हें बाँधने के लिए) अपनी खाल खिंचवाकर विपत्ति सहकर मर जाते हैं। हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी! सुनिए, दुष्ट बिना किसी स्वार्थ के साँप और चूहे के समान अकारण ही दूसरों का अपकार करते हैं॥9॥

*** पर संपदा बिनासि नसाहीं। जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं॥ दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू॥10॥

भावार्थ:-

वे पराई संपत्ति का नाश करके स्वयं नष्ट हो जाते हैं, जैसे खेती का नाश करके ओले नष्ट हो

जाते हैं। दुष्ट का अभ्युदय (उन्नति) प्रसिद्ध अधम ग्रह केतु के उदय की भाँति जगत के दुःख के लिए ही होता है॥10॥

*** संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी॥ परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गरीसा॥11॥

भावार्थ:-

और संतों का अभ्युदय सदा ही सुखकर होता है, जैसे चंद्रमा और सूर्य का उदय विश्व भर के लिए सुखदायक है। वेदों में अहिंसा को परम धर्म माना है और परनिन्दा के समान भारी पाप नहीं है॥11॥

*** हर गुर निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तन सोई॥ द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जग जनमइ बायस सरीर धरि॥12॥

भावार्थ:-

शंकरजी और गुरु की निंदा करने वाला मनुष्य (अगले जन्म में) मेंढक होता है और वह हजार जन्म तक वही मेंढक का शरीर पाता है। ब्राह्मणों की निंदा करने वाला व्यक्ति बहुत से नरक भोगकर फिर जगत् में कौए का शरीर धारण करके जन्म लेता है॥12॥

*** सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी॥ होहिं उलूक संत निंदा रत। मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत॥13॥

भावार्थ:-

जो अभिमानी जीव देवताओं और वेदों की निंदा करते हैं, वे रौरव नरक में पड़ते हैं। संतों की निंदा में लगे हुए लोग उल्लू होते हैं जिन्हें मोह रूपी रात्रि प्रिय होती है और ज्ञान रूपी सूर्य जिनके लिए बीत गया (अस्त हो गया) रहता है॥13॥

*** सब कै निंदा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं॥ सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा॥14॥

भावार्थ:-

जो मूर्ख मनुष्य सब की निंदा करते हैं, वे चमगादड़ होकर जन्म लेते हैं। हे तात! अब मानस रोग सुनिए, जिनसे सब लोग दुःख पाया करते हैं॥14॥

*** मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥ काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥15॥

भावार्थ:-

सब रोगों की जड़ मोह (अज्ञान) है। उन व्याधियों से फिर और बहुत से शूल उत्पन्न होते हैं। काम वात है, लोभ अपार (बढ़ा हुआ) कफ है और क्रोध पित्त है जो सदा छाती जलाता रहता है॥15॥

*** प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥ बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब

सूल नाम को जाना॥16॥

भावार्थ:-

यदि कहीं ये तीनों भाई (वात, पित्त और कफ) प्रीति कर लें (मिल जाएँ), तो दुःखदायक सन्निपात रोग उत्पन्न होता है। कठिनता से प्राप्त (पूर्ण) होने वाले जो विषयों के मनोरथ हैं, वे ही सब शूल (कष्टदायक रोग) हैं, उनके नाम कौन जानता है (अर्थात् वे अपार हैं)॥16॥

चौपाई :

*** ममता दादु कंडु इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई॥ पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई॥17॥

भावार्थ:-

ममता दाद है, ईर्षा (डाह) खुजली है, हर्ष-विषाद गले के रोगों की अधिकता है (गलगंड, कण्ठमाला या घेघा आदि रोग हैं), पराए सुख को देखकर जो जलन होती है, वही क्षयी है। दुष्टता और मन की कुटिलता ही कोढ़ है॥17॥

*** अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ॥ तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी। त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी॥18॥

भावार्थ:-

अहंकार अत्यंत दुःख देने वाला डमरू (गाँठ का) रोग है। दम्भ, कपट, मद और मान नहरुआ (नसों का) रोग है। तृष्णा बड़ा भारी उदर वृद्धि (जलोदर) रोग है। तीन प्रकार (पुत्र, धन और मान) की प्रबल इच्छाएँ प्रबल तिजारी हैं॥18॥

*** जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका॥19॥

भावार्थ:-

मत्सर और अविवेक दो प्रकार के ज्वर हैं। इस प्रकार अनेकों बुरे रोग हैं, जिन्हें कहाँ तक कहूँ॥19॥

दोहा :

*** एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि। पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि॥121 क॥

भावार्थ:-

एक ही रोग के वश होकर मनुष्य मर जाते हैं, फिर ये तो बहुत से असाध्य रोग हैं। ये जीव को निरंतर कष्ट देते रहते हैं, ऐसी दशा में वह समाधि (शांति) को कैसे प्राप्त करे?॥121 (क)॥

*** नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान। भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान॥121 ख॥

भावार्थ:-

नियम, धर्म, आचार (उत्तम आचरण), तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान तथा और भी करोड़ों औषधियाँ हैं,

परंतु हे गरुड़जी! उनसे ये रोग नहीं जाते॥121 (ख)॥

चौपाई :

*** एहि बिधि सकल जीव जग रोगी। सोक हरष भय प्रीति बियोगी॥ मानस रोग कछुक मैं गाए। हहिं सब कें लखि बिरलेन्ह पाए॥1॥

भावार्थ:-

इस प्रकार जगत् में समस्त जीव रोगी हैं, जो शोक, हर्ष, भय, प्रीति और वियोग के दुःख से और भी दुःखी हो रहे हैं। मैंने ये थोड़े से मानस रोग कहे हैं। ये हैं तो सबको, परंतु इन्हें जान पाए हैं कोई विरले ही॥1॥

*** जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी॥ बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे॥2॥

भावार्थ:-

प्राणियों को जलाने वाले ये पापी (रोग) जान लिए जाने से कुछ क्षीण अवश्य हो जाते हैं, परंतु नाश को नहीं प्राप्त होते। विषय रूप कुपथ्य पाकर ये मुनियों के हृदय में भी अंकुरित हो उठते हैं, तब बेचारे साधारण मनुष्य तो क्या चीज हैं॥2॥

*** राम कृपाँ नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संजोगा॥ सदगुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा॥3॥

भावार्थ:-

यदि श्री रामजी की कृपा से इस प्रकार का संयोग बन जाए तो ये सब रोग नष्ट हो जाएँ। सद्गुरु रूपी वैद्य के वचन में विश्वास हो। विषयों की आशा न करे, यही संयम (परहेज) हो॥3॥

## भजन महिमा

चौपाई :

*** रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥ एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥4॥

भावार्थ:-

श्री रघुनाथजी की भक्ति संजीवनी जड़ी है। श्रद्धा से पूर्ण बुद्धि ही अनुपान (दवा के साथ लिया जाने वाला मधु आदि) है। इस प्रकार का संयोग हो तो वे रोग भले ही नष्ट हो जाएँ, नहीं तो करोड़ों प्रयत्नों से भी नहीं जाते॥4॥

*** जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई॥ सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई॥5॥

भावार्थ:-

हे गोसाईं! मन को निरोग हुआ तब जानना चाहिए, जब हृदय में वैराग्य का बल बढ़ जाए, उत्तम बुद्धि रूपी भूख नित नई बढ़ती रहे और विषयों की आशा रूपी दुर्बलता मिट जाए॥5॥

*** बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई॥ सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद॥6॥

भावार्थ:-

इस प्रकार सब रोगों से छूटकर जब मनुष्य निर्मल ज्ञान रूपी जल में स्नान कर लेता है, तब उसके हृदय में राम भक्ति छा रहती है। शिवजी, ब्रह्माजी, शुकदेवजी, सनकादि और नारद आदि ब्रह्मविचार में परम निपुण जो मुनि हैं,॥6॥

*** सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥ श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥7॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज! उन सबका मत यही है कि श्री रामजी के चरणकमलों में प्रेम करना चाहिए। श्रुति, पुराण और सभी ग्रंथ कहते हैं कि श्री रघुनाथजी की भक्ति के बिना सुख नहीं है॥7॥

*** कमठ पीठ जामहिं बरु बारा। बंध्या सुत बरु काहु हि मारा॥ फूलहिं नभ बरु बहु बिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला॥8॥

भावार्थ:-

कछुए की पीठ पर भले ही बाल उग आवें, बाँझ का पुत्र भले ही किसी को मार डाले, आकाश में भले ही अनेकों प्रकार के फूल खिल उठें, परंतु श्री हरि से विमुख होकर जीव सुख नहीं प्राप्त कर सकता॥8॥

*** तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहिं सस सीस बिषाना॥ अंधकारु बरु रबिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै॥9॥

भावार्थ:-

मृगतृष्णा के जल को पीने से भले ही प्यास बुझ जाए, खरगोश के सिर पर भले ही सींग निकल आवे, अन्धकार भले ही सूर्य का नाश कर दे, परंतु श्री राम से विमुख होकर जीव सुख नहीं पा सकता॥9॥

*** हिम ते अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई॥ 10॥

भावार्थ:-

बर्फ से भले ही अग्नि प्रकट हो जाए (ये सब अनहोनी बातें चाहे हो जाएँ), परंतु श्री राम से विमुख होकर कोई भी सुख नहीं पा सकता॥10॥

दोहा :

*** बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल। बिनु हरि भजन न तव तरिअ यह सिद्धांत

अपेल॥122 क॥

भावार्थ:-

जल को मथने से भले ही घी उत्पन्न हो जाए और बालू (को पेरने) से भले ही तेल निकल आवे, परंतु श्री हरि के भजन बिना संसार रूपी समुद्र से नहीं तरा जा सकता, यह सिद्धांत अटल है॥122 (क)॥

*** मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन। अस बिचारि तजि संसय रामहि भजहिं प्रबीन॥122 ख॥

भावार्थ:-

प्रभु मच्छर को ब्रह्मा कर सकते हैं और ब्रह्मा को मच्छर से भी तुच्छ बना सकते हैं। ऐसा विचार कर चतुर पुरुष सब संदेह त्यागकर श्री रामजी को ही भजते हैं॥122 (ख)॥ श्लोक :

*** विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे। हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते॥122 ग॥

भावार्थ:-

मैं आपसे भली-भाँति निश्चित किया हुआ सिद्धांत कहता हूँ- मेरे वचन अन्यथा (मिथ्या) नहीं हैं कि जो मनुष्य श्री हरि का भजन करते हैं, वे अत्यंत दुस्तर संसार सागर को (सहज ही) पार कर जाते हैं॥122 (ग)॥

चौपाई :

*** कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा। ब्यास समास स्वमति अनुरूपा॥ श्रुति सिद्धांत इहइ उरगारी। राम भजिअ सब काज बिसारी॥1॥

भावार्थ:-

हे नाथ! मैंने श्री हरि का अनुपम चरित्र अपनी बुद्धि के अनुसार कहीं विस्तार से और कहीं संक्षेप से कहा। हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी ! श्रुतियों का यही सिद्धांत है कि सब काम भुलाकर (छोड़कर) श्री रामजी का भजन करना चाहिए॥1॥

*** प्रभु रघुपति तजि सेइअ काही। मोहि से सठ पर ममता जाही॥ तुम्ह बिग्यानरूप नहिं मोहा। नाथ कीन्हि मो पर अति छोहा॥2॥

भावार्थ:-

प्रभु श्री रघुनाथजी को छोड़कर और किसका सेवन (भजन) किया जाए, जिनका मुझ जैसे मूर्ख पर भी ममत्व (स्नेह) है। हे नाथ! आप विज्ञान रूप हैं, आपको मोह नहीं है। आपने तो मुझ पर बड़ी कृपा की है॥2॥

## रामायण माहात्म्य, तुलसी विनय और फलस्तुति

*** पूँछिहु राम कथा अति पावनि। सुक सनकादि संभु मन भावनि॥ सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकउ बारा॥3॥

भावार्थ:-

जो आपने मुझ से शुकदेवजी, सनकादि और शिवजी के मन को प्रिय लगने वाली अति पवित्र रामकथा पूछी। संसार में घड़ी भर का अथवा पल भर का एक बार का भी सत्संग दुर्लभ है॥3॥

*** देखु गरुड़ निज हृदयँ बिचारी। मैं रघुबीर भजन अधिकारी॥ सकुनाधम सब भाँति अपावन। प्रभु मोहि कीन्ह बिदित जग पावन॥4॥

भावार्थ:-

हे गरुड़जी! अपने हृदय में विचार कर देखिए, क्या मैं भी श्री रामजी के भजन का अधिकारी हूँ? पक्षियों में सबसे नीच और सब प्रकार से अपवित्र हूँ, परंतु ऐसा होने पर भी प्रभु ने मुझको सारे जगत् को पवित्र करने वाला प्रसिद्ध कर दिया (अथवा प्रभु ने मुझको जगत्प्रसिद्ध पावन कर दिया)॥4॥

दोहा :

*** आजु धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब बिधि हीन। निज जन जानि राम मोहि संत समागम दीन॥123 क॥

भावार्थ:-

यद्यपि मैं सब प्रकार से हीन (नीच) हूँ, तो भी आज मैं धन्य हूँ, अत्यंत धन्य हूँ, जो श्री रामजी ने मुझे अपना 'निज जन' जानकर संत समागम दिया (आपसे मेरी भेंट कराई)॥123 (क)॥

*** नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ। चरित सिंधु रघुनायक थाह कि पावइ कोइ॥123 ख॥

भावार्थ:-

हे नाथ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार कहा, कुछ भी छिपा नहीं रखा। (फिर भी) श्री रघुवीर के चरित्र समुद्र के समान हैं, क्या उनकी कोई थाह पा सकता है?॥123 (ख)॥

चौपाई :

*** सुमिरि राम के गुन गन नाना। पुनि पुनि हरष भुसुंडि सुजाना॥ महिमा निगम नेत करि गाई। अतुलित बल प्रताप प्रभुताई॥1॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी के बहुत से गुण समूहों का स्मरण कस्करके सुजान भुशुण्डिजी बार-बार हर्षित हो रहे हैं। जिनकी महिमा वेदों ने 'नेति-नेति' कहकर गाई है, जिनका बल, प्रताप और प्रभुत्व (सामर्थ्य) अतुलनीय है,॥1॥

*** सिव अज पूज्य चरन रघुराई। मो पर कृपा परम मृदुलाई॥ अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ।

केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥2॥

भावार्थ:-

जिन श्री रघुनाथजी के चरण शिवजी और ब्रह्माजी के द्वारा पूज्य हैं, उनकी मुझ पर कृपा होनी उनकी परम कोमलता है। किसी का ऐसा स्वभाव कहीं न सुनता हूँ न देखता हूँ। अतः हे पक्षीराज गरुड़जी! मैं श्री रघुनाथजी के समान किसे गिनूँ (समझूँ)?॥2॥

*** साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद कृतग्य संन्यासी॥ जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पंडित बिग्यानी॥3॥

भावार्थ:-

साधक, सिद्ध, जीवनमुक्त, उदासीन (विरक्त), कवि, विद्वान, कर्म (रहस्य) के ज्ञाता, संन्यासी, योगी, शूरवीर, बड़े तपस्वी, ज्ञानी, धर्मपरायण, पंडित और विज्ञानी-॥3॥

*** तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥ सरन गएँ मो से अघ रासी। होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी॥4॥

भावार्थ:-

ये कोई भी मेरे स्वामी श्री रामजी का सेवन (भजन) किए बिना नहीं तर सकते। मैं, उन्हीं श्री रामजी को बार-बार नमस्कार करता हूँ। जिनकी शरण जाने पर मुझ जैसे पापराशि भी शुद्ध (पापरहित) हो जाते हैं, उन अविनाशी श्री रामजी को मैं नमस्कार करता हूँ॥4॥

दोहा :

*** जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल॥124 क॥

भावार्थ:-

जिनका नाम जन्म-मरण रूपी रोग की (अव्यर्थ) औषध और तीनों भयंकर पीड़ाओं (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःखों) को हरने वाला है, वे कृपालु श्री रामजी मुझ पर और आप पर सदा प्रसन्न रहें॥124 (क)॥

*** सुनि भुसुंडि के बचन सुभ देखि राम पद नेह। बोलेउ प्रेम सहित गिरा गरुड़ बिगत संदेह॥124 ख॥

भावार्थ:-

भुशुण्डिजी के मंगलमय वचन सुनकर और श्री रामजी के चरणों में उनका अतिशय प्रेम देखकर संदेह से भलीभाँति छूटे हुए गरुड़जी प्रेमसहित वचन बोले॥124 (ख)॥

चौपाई :

*** मैं कृतकृत्य भयउँ तव बानी। सुनि रघुबीर भगति रस सानी॥ राम चरन नूतन रत भई। माया जनित बिपति सब गई॥1॥

भावार्थ:-

श्री रघुवीर के भक्ति रस में सनी हुई आपकी वाणी सुनकर मैं कृतकृत्य हो गया। श्री रामजी के चरणों में मेरी नवीन प्रीति हो गई और माया से उत्पन्न सारी विपत्ति चली गई॥1॥

*** मोह जलधि बोहित तुम्ह भए। मो कहँ नाथ बिबिध सुख दए॥ मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। बंदउँ तव पद बारहिं बारा॥2॥

भावार्थ:-

मोह रूपी समुद्र में डूबते हुए मेरे लिए आप जहाज हुए। हे नाथ! आपने मुझे बहुत प्रकार के सुख दिए (परम सुखी कर दिया)। मुझसे इसका प्रत्युपकार (उपकार के बदले में उपकार) नहीं हो सकता। मैं तो आपके चरणों की बार-बार वंदना ही करता हूँ॥2॥

*** पूरन काम राम अनुरागी। तुम्ह सम तात न कोउ बड़भागी॥ संत बिटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह कै करनी॥3॥

भावार्थ:-

आप पूर्णकाम हैं और श्री रामजी के प्रेमी हैं। हे तात! आपके समान कोई बड़भागी नहीं है। संत, वृक्ष, नदी, पर्वत और पृथ्वी- इन सबकी क्रिया पराए हित के लिए ही होती है॥3॥

*** संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना॥ निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर सुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥4॥

भावार्थ:-

संतों का हृदय मक्खन के समान होता है, ऐसा कवियों ने कहा है, परंतु उन्होंने (असली बात) कहना नहीं जाना, क्योंकि मक्खन तो अपने को ताप मिलने से पिघलता है और परम पवित्र संत दूसरों के दुःख से पिघल जाते हैं॥4॥

*** जीवन जन्म सफल मम भयऊ। तव प्रसाद संसय सब गयऊ॥ जानेहु सदा मोहि निज किंकर। पुनि पुनि उमा कहइ बिहंगबर॥5॥

भावार्थ:-

मेरा जीवन और जन्म सफल हो गया। आपकी कृपा से सब संदेह चला गया। मुझे सदा अपना दास ही जानिएगा। (शिवजी कहते हैं-) हे उमा! पक्षी श्रेष्ठ गरुड़जी बार-बार ऐसा कह रहे हैं॥5॥

दोहा :

***तासु चरन सिरु नाइ करि प्रेम सहित मतिधीर। गयउ गरुड़ बैकुंठ तब हृदयँ राखि रघुबीर॥125 क॥

भावार्थ:-

उन (भुशुण्डिजी) के चरणों में प्रेमसहित सिर नवाकर और हृदय में श्री रघुवीर को धारण करके धीरबुद्धि गरुड़जी तब वैकुंठ को चले गए॥125 (क)॥

*** गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन। बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान॥125 ख॥

भावार्थ:-

हे गिरिजे! संत समागम के समान दूसरा कोई लाभ नहीं है। पर वह (संत समागम) श्री हरि की कृपा के बिना नहीं हो सकता, ऐसा वेद और पुराण गाते हैं॥125 (ख)॥

चौपाई :

*** कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत श्रवन छूटहिं भव पासा॥ प्रनत कल्पतरु करुना पुंजा। उपजइ प्रीति राम पद कंजा॥1॥

भावार्थ:-

मैंने यह परम पवित्र इतिहास कहा, जिसे कानों से सुनते ही भवपाश (संसार के बंधन) छूट जाते हैं और शरणागतों को (उनके इच्छानुसार फल देने वाले) कल्पवृक्ष तथा दया के समूह श्री रामजी के चरणकमलों में प्रेम उत्पन्न होता है॥1॥

***मन क्रम बचन जनित अघ जाई। सुनहिं जे कथा श्रवन मन लाई॥ तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई॥2॥

भावार्थ:-

जो कान और मन लगाकर इस कथा को सुनते हैं, उनके मन, वचन और कर्म (शरीर) से उत्पन्न सब पाप नष्ट हो जाते हैं। तीर्थ यात्रा आदि बहुत सेसाधन, योग, वैराग्य और ज्ञान में निपुणता,॥2॥

*** नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना॥ भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई॥3॥

भावार्थ:-

अनेकों प्रकार के कर्म, धर्म, व्रत और दान, अनेकों संयम दम, जप, तप और यज्ञ, प्राणियों पर दया, ब्राह्मण और गुरु की सेवा, विद्या, विनय और विवेक की बड़ाई (आदि)-॥3॥

*** जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी॥ सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई। राम कृपाँ काहूँ एक पाई॥4॥

भावार्थ:-

जहाँ तक वेदों ने साधन बतलाए हैं, हे भवानी! उन सबका फल श्री हरि की भक्ति ही है, किंतु श्रुतियों में गाई हुई वह श्री रघुनाथजी की भक्ति श्री रामजी की कृपा से किसी एक(विरले) ने ही पाई है॥4।

दोहा :

*** मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास। जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि बिस्वास॥126॥

भावार्थ:-

किंतु जो मनुष्य विश्वास मानकर यह कथा निरंतर सुनते हैं वे बिना ही परिश्रम उस मुनि दुर्लभ

हरि भक्ति को प्राप्त कर लेते हैं॥126॥

चौपाई :

*** सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता॥ धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता॥1॥

भावार्थ:-

जिसका मन श्री रामजी के चरणों में अनुरक्त है, वही सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाला) है, वही गुणी है, वही ज्ञानी है। वही पृथ्वी का भूषण, पण्डित और दानी है। वही धर्मपरायण है और वही कुल का रक्षक है॥1॥

***नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना॥ सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा॥2॥

भावार्थ:-

जो छल छोड़कर श्री रघुवीर का भजन करता है, वही नीति में निपुण है, वही परम् बुद्धिमान है। उसी ने वेदों के सिद्धांत को भली-भाँति जाना है। वही कवि, वही विद्वान् तथा वही रणधीर है॥2॥

*** धन्य देस सो जहँ सुरसरी। धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी॥ धन्य सो भूपु नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई॥3॥

भावार्थ:-

वह देश धन्य है, जहाँ श्री गंगाजी हैं, वह स्त्री धन्य है जो पातिव्रत धर्म का पालन करती है। वह राजा धन्य है जो न्याय करता है और वह ब्राह्मण धन्य है जो अपने धर्म से नहीं डिगता है॥3॥

*** सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी॥ धन्य घरी सोइ जब सतसंगा। धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा॥4॥

भावार्थ:-

वह धन धन्य है, जिसकी पहली गति होती है (जो दान देने में व्यय होता है) वही बुद्धि धन्य और परिपक्व है जो पुण्य में लगी हुई है। वही घड़ी धन्य है जब सत्संग हो और वही जन्म धन्य है जिसमें ब्राह्मण की अखण्ड भक्ति हो॥4॥ (धन की तीन गतियाँ होती हैं- दान, भोग और नाश। दान उत्तम है, भोग मध्यम है और नाश नीच गति है। जो पुरुष न देता है, न भोगता है, उसके धन की तीसरी गति होती है।) दोहा:

*** सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत। श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥127॥

भावार्थ:-

हे उमा! सुनो वह कुल धन्य है, संसारभर के लिए पूज्य है और परम पवित्र है, जिसमें श्री रघुवीर परायण (अनन्य रामभक्त) विनम्र पुरुष उत्पन्न हों॥127॥

चौपाई :

*** मति अनुरूप कथा मैं भाषी। जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी॥ तव मन प्रीति देखि अधिकाई। तब मैं रघुपति कथा सुनाई॥1॥

भावार्थ:-

मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार यह कथा कही, यद्यपि पहले इसको छिपाकर रखा था। जब तुम्हारे मन में प्रेम की अधिकता देखी तब मैंने श्री रघुनाथजी की यह कथा तुमको सुनाई॥1॥

*** यह न कहिअ सठही हठसीलहि। जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि॥ कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि। जो न भजइ सचराचर स्वामिहि॥2॥

भावार्थ:-

यह कथा उनसे न कहनी चाहिए जो शठ (धूर्त) हों, हठी स्वभाव के हों और श्री हरि की लीला को मन लगाकर न सुनते हों। लोभी, क्रोधी और कामी को, जो चराचर के स्वामी श्री रामजी को नहीं भजते, यह कथा नहीं कहनी चाहिए॥2॥

*** द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ॥ रामकथा के तेइ अधिकारी। जिन्ह कें सत संगति अति प्यारी॥3॥

भावार्थ:-

ब्राह्मणों के द्रोही को, यदि वह देवराज (इन्द्र) के समान ऐश्वर्यवान् राजा भी हो, तब भी यह कथा न सुनानी चाहिए। श्री रामकथा के अधिकारी वे ही हैं जिनको सत्संगति अत्यंत प्रिय है॥3॥

*** गुर पद प्रीति नीति रत जेई। द्विज सेवक अधिकारी तेई॥ ता कहँ यह बिसेष सुखदाई। जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई॥4॥

भावार्थ:-

जिनकी गुरु के चरणों में प्रीति है, जो नीतिपरायण हैं और ब्राह्मणों के सेवक हैं, वे ही इसके अधिकारी हैं और उसको तो यह कथा बहुत ही सुख देने वाली है जिसको श्री रघुनाथजी प्राण के समान प्यारे हैं॥4॥

दोहा :

*** राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्बान। भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान॥128॥

भावार्थ:-

जो श्री रामजी के चरणों में प्रेम चाहता हो या मोक्षपद चाहता हो, वह इस कथा रूपी अमृत को प्रेमपूर्वक अपने कान रूपी दोने से पिए॥128॥

चौपाई :

*** राम कथा गिरिजा मैं बरनी। कलि मल समनि मनोमल हरनी॥ संसृति रोग सजीवन मूरी। राम कथा गावहिं श्रुति सूरी॥1॥

भावार्थ:-

हे गिरिजे! मैंने कलियुग के पापों का नाश करने वाली और मन के मल को दूर करने वाली रामकथा का वर्णन किया। यह रामकथा संसृति (जन्म-मरण) रूपी रोग के (नाश के) लिए संजीवनी जड़ी है, वेद और विद्वान पुरुष ऐसा कहते हैं॥1॥

*** एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना॥ अति हरि कृपा जाहि पर होई। पाउँ देइ एहिं मारग सोई॥2॥

भावार्थ:-

इसमें सात सुंदर सीढ़ियाँ हैं, जो श्री रघुनाथजी की भक्ति को प्राप्त करने के मार्ग हैं। जिस पर श्री हरि की अत्यंत कृपा होती है, वही इस मार्ग पर पैर रखता है॥2॥

*** मन कामना सिद्धि नर पावा। जे यह कथा कपट तजि गावा॥ कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं॥3॥

भावार्थ:-

जो कपट छोड़कर यह कथा गाते हैं, वे मनुष्य अपनी मनःकामना की सिद्धि पा लेते हैं, जो इसे कहते-सुनते और अनुमोदन (प्रशंसा) करते हैं, वे संसार रूपी समुद्र को गो के खुर से बने हुए गड्ढे की भाँति पार कर जाते हैं॥3॥

*** सुनि सब कथा हृदय अति भाई। गिरिजा बोली गिरा सुहाई॥ नाथ कृपाँ मम गत संदेहा। राम चरन उपजेउ नव नेहा॥4॥

भावार्थ:-

(याज्ञवल्क्यजी कहते हैं-) सब कथा सुनकर श्री पार्वतीजी के हृदय को बहुत ही प्रिय लगी और वे सुंदर वाणी बोलीं- स्वामी की कृपा से मेरा संदेह जाता रहा और श्री रामजी के चरणों में नवीन प्रेम उत्पन्न हो गया॥4॥

दोहा :

*** मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस। उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस॥129॥

भावार्थ:-

हे विश्वनाथ! आपकी कृपा से अब मैं कृतार्थ हो गई। मुझमें दृढ़ राम भक्ति उत्पन्न हो गई और मेरे संपूर्ण क्लेश बीत गए (नष्ट हो गए)॥129॥

चौपाई :

*** यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा॥ भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा॥1॥

भावार्थ:-

शम्भु-उमा का यह कल्याणकारी संवाद सुख उत्पन्न करने वाला और शोक का नाश करने वाला है। जन्म-मरण का अंत करने वाला, संदेहों का नाश करने वाला, भक्तों को आनंद देने वाला और संत पुरुषों को प्रिय है॥1॥

*** राम उपासक जे जग माहीं। एहि सम प्रिय तिन्ह कें कछु नाहीं॥ रघुपति कृपाँ जथामति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा॥2॥

भावार्थ:-

जगत् में जो (जितने भी) रामोपासक हैं, उनको तो इस रामकथा के समान कुछ भी प्रिय नहीं है। श्री रघुनाथजी की कृपा से मैंने यह सुंदर और पवित्र करने वाला चरित्र अपनी बुद्धि के अनुसार गाया है॥2॥

*** एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा॥ रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥3॥

भावार्थ:-

(तुलसीदासजी कहते हैं-) इस कलिकाल में योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत और पूजन आदि कोई दूसरा साधन नहीं है। बस, श्री रामजी का ही स्मरण करना, श्री रामजी का ही गुण गाना और निरंतर श्री रामजी के ही गुणसमूहों को सुनना चाहिए॥3॥

*** जासु पतित पावन बड़ बाना। गावहिं कबि श्रुति संत पुराना॥ ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजें गति केहिं नहिं पाई॥4॥

भावार्थ:-

पतितों को पवित्र करना जिनका महान् (प्रसिद्ध) बाना है, ऐसा कवि, वेद, संत और पुराण गाते हैं- रेमन! कुटिलता त्याग कर उन्हीं को भज। श्री राम को भजने से किसने परम गति नहीं पाई?॥4॥

छंद :

***पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना। गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥ आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे। कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥1॥

भावार्थ:-

अरे मूर्ख मन! सुन, पतितों को भी पावन करने वाले श्री राम को भजकर किसने परमगति नहीं पाई? गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गज आदि बहुत से दुष्टों को उन्होंने तार दिया। आभीर, यवन, किरात, खस, श्वपच (चाण्डाल) आदि जो अत्यंत पाप रूप ही हैं, वे भी केवल एक बार जिनका नाम लेकर पवित्र हो जाते हैं, उन श्री रामजी को मैं नमस्कार करता हूँ॥1॥

*** रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं। कलि मल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं॥ सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै। दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्री रघुबर हरै॥2॥

भावार्थ:-

जो मनुष्य रघुवंश के भूषण श्री रामजी का यह चरित्र कहते हैं सुनते हैं और गाते हैं, वे कलियुग

के पाप और मन के मल को धोकर बिना ही परिश्रम श्री रामजी के परम धाम को चले जाते हैं। (अधिक क्या) जो मनुष्य पाँच-सात चौपाइयों को भी मनोहर जानकर (अथवा रामायण की चौपाइयों को श्रेष्ठ पंच (कर्तव्याकर्तव्य का सच्चा निर्णायक) जानकर उनको हृदय में धारण कर लेता है, उसके भी पाँच प्रकार की अविद्याओं से उत्पन्न विकारों को श्री रामजी हरण कर लेते हैं, (अर्थात् सारे रामचरित्र की तो बात ही क्या है, जो पाँच-सात चौपाइयों को भी समझकर उनका अर्थ हृदय में धारण कर लेते हैं, उनके भी अविद्याजनित सारे क्लेश श्री रामचंद्रजी हर लेते हैं)॥2॥

*** सुंदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो। सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को॥ जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ। पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥3॥

भावार्थ:-

(परम) सुंदर, सुजान और कृपानिधान तथा जो अनाथों पर प्रेम करते हैं, ऐसे एक श्री रामचंद्रजी ही हैं। इनके समान निष्काम (निःस्वार्थ) हित करने वाला (सुहृद्) और मोक्ष देने वाला दूसरा कौन है? जिनकी लेशमात्र कृपा से मंदबुद्धि तुलसीदास ने भी परम शांति प्राप्त कर ली, उन श्री रामजी के समान प्रभु कहीं भी नहीं हैं॥3॥

दोहा :

*** मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर। अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर॥130 क॥

भावार्थ:-

हे श्री रघुवीर! मेरे समान कोई दीन नहीं है और आपके समान कोई दीनों का हित करने वाला नहीं है। ऐसा विचार कर हे रघुवंशमणि! मेरे जन्म-मरण के भयानक दुःख का हरण कर लीजिए॥130 (क)॥

*** कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम। तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥130 ख॥

भावार्थ:-

जैसे कामी को स्त्री प्रिय लगती है और लोभी को जैसे धन प्यारा लगता है, वैसे ही हे रघुनाथजी। हे रामजी! आप निरंतर मुझे प्रिय लगिए॥130 (ख)॥ श्लोक :

*** यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्तयै तु रामायणम्। मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमः शान्तये। भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥1॥

भावार्थ:-

श्रेष्ठ कवि भगवान् श्री शंकरजी ने पहले जिस दुर्गम मानस-रामायण की, श्री रामजी के

चरणकमलों में नित्य-निरंतर (अनन्य) भक्ति प्राप्त होने के लिए रचना की थी, उस मानस-रामायण को श्री रघुनाथजी के नाम में निरत मानकर अपने अंतःकरण के अंधकार को मिटाने के लिए तुलसीदास ने इस मानस के रूप में भाषाबद्ध किया॥1॥

*** पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं। मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्। श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥2॥

भावार्थ:-

यह श्री रामचरित मानस पुण्य रूप, पापों का हरण करने वाला, सदा कल्याणकारी, विज्ञान और भक्ति को देने वाला, माया मोह और मल का नाश करने वाला, परम निर्मल प्रेम रूपी जल से परिपूर्ण तथा मंगलमय है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस मानसरोवर में गोता लगाते हैं वे संसाररूपी सूर्य की अति प्रचण्ड किरणों से नहीं जलते॥2॥ मासपारायण, तीसवाँ विश्राम नवाह्नपारायण, नवाँ विश्राम इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने सप्तमः सोपानः समाप्तः। कलियुग के समस्त पापों का नाश करने वाले श्री रामचरित मानस का यह सातवाँ सोपान समाप्त हुआ। ***अगला पेज...***